इकाई 8 प्रमाण निरूपण : अनुमान, उपमान, शब्द

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अनुमान प्रमाण (अनुमितिकरणम् से इति बाधित्वम् पर्यन्त)

8.3 उपमान प्रमाण (उपमितिकरणम् से उत्पद्यते पर्यन्त)

8.4 शब्द प्रमाण (आप्तवाक्यं से तु शब्दः पर्यन्त)

8.5 अयथार्थ अनुभव (अयथार्थानुभवः से अप्रमाजन्या अयथार्था पर्यन्त)

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अनुमान प्रमाण का लक्षण, स्वरूप तथा उसके भेदों के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।
- हेत्वाभास के स्वरूप एवं उसके भेदों को जान सकेंगे।
- उपमान प्रमाण के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- शब्द प्रमाण के स्वरूप से परिचित होंगे।
- अयथार्थ अनुभव तथा उसके भेदों का विस्तृत बोध करेंगे; तथा
- अनुमान, उपमान एवं शब्द प्रमाण की पारिभाषिक शब्दावली तथा विशिष्ट प्रयोग विधि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा स्वाभिमत सैद्धान्तिक चिन्तन को जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए तीन पद्धतियों का प्रयोग करती है – तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा तथा आचारमीमांसा। तत्त्वचिन्तन की इस प्रक्रिया में प्रमाणमीमांसा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रमाणों की सहायता से ही प्रमेयों (तत्त्वों) का ज्ञान सम्भव होता है। दर्शनसरणियों में यह प्रसिद्ध उक्ति भी है – 'मानाधीना मेयसिद्धिः' अर्थात् मेय (प्रमेय) की सिद्धि मान (प्रमाण) के अधीन होती है। प्रमा या यथार्थज्ञान की उपलब्धि किसी साधन की सहायता से ही होती है इसलिए सामान्य रूप से प्रमा की उपलब्धि के साधन ही प्रमाण कहलाते हैं। 'प्रमाण' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी तथ्य को उद्घाटित करती है– 'प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्' अर्थात् जिससे प्रमा की प्राप्ति हो उसे प्रमाण कहते हैं। न्यायभाष्यकार आचार्य वात्स्यायन का कथन है – 'उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि' अर्थात् उपलब्धि ज्ञान के साधन ही प्रमाण हैं।

भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों में प्रमाणों की संख्या तथा उसके लक्षण एवं स्वरूप में अत्यन्त मतभेद है। चार्वाक दर्शन जहाँ केवल प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानता है वहीं वैशेषिक एवं बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान; सांख्य–योग एवं जैन दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द; न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द; प्रभाकर मीमांसा में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द तथा अर्थापत्ति; भाट्ट मीमांसा एवं अद्वैतवेदान्त में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अभाव को प्रमाण स्वीकार किया जाता है।

आचार्य अन्नम्भट्टकृत 'तर्कसंग्रह' यद्यपि वैशेषिक दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है तथापि इसमें न्यायदर्शनसम्मत चतुर्विध प्रमाणव्यवस्था का विवेचन किया गया है। इन्द्रिय तथा अर्थ (विषय) के संनिकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। अनुमान प्रमाण लिंगपरामर्श से जन्य होता है। संज्ञासंज्ञिसम्बन्ध का ज्ञान कराने वाला प्रमाण उपमान कहलाता है। आप्तवाक्य से जन्य प्रमाण को शब्द प्रमाण कहते हैं।

8.2 अनुमान प्रमाण (अनुमितिकरणम् से इति बाधित्वम् पर्यन्त)

अनुमितिकरणमनुमानम्। परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः। व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः'। यथा 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत' इति ज्ञानं परामर्शः'। तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः। यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः। व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता।

प्रसंग : प्रस्तुत अनुच्छेद में तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नम्भट्ट न्याय–वैशेषिक परम्परा में स्वीकृत अनुमान प्रमाण के स्वरूप का विवेचन करते हैं। इसी प्रसंग में वे अनुमान प्रमाण की सिद्धि में सहायक अनेक शब्दों यथा– अनुमिति, व्याप्ति, परामर्श, पक्षधर्मता आदि का लक्षण एवं स्वरूप भी स्पष्ट करते हैं।

व्याख्या : सर्वप्रथम अनुमान का लक्षण करते हुए आचार्य कहते हैं कि अनुमिति ज्ञान का करण ही अनुमान प्रमाण कहलाता है। 'करण' का अर्थ असाधारण कारण है अर्थात् जिस कारण का प्रयोग करते ही कार्य की तुरन्त निष्पत्ति हो जाय। जिस प्रकार छिदा रूप कार्य के प्रति परशुकरण है क्योंकि परशु का दारु से संयोग होते ही छिदा की निष्पत्ति हो जाती है, उसी प्रकार अनुमान की प्रक्रिया में 'परामर्श' को अनुमिति का करण कहा जाता है। अनुमिति वस्तुतः परामर्श से उत्पन्न होने वाला ज्ञान है।

पुनः ग्रन्थकार परामर्श का लक्षण करते हैं – ''व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः'' अर्थात् व्याप्ति से विशिष्ट पक्षधर्मता का ज्ञान परामर्श कहलाता है। उदाहरणरूप में धूम और अग्नि का आपस में जो एक अवश्यप्राप्ति रूप सम्बन्ध है कि जहाँ–जहाँ धूम होगा वहाँ–वहाँ अग्नि अवश्य हुआ करेगी, यह जो विशिष्ट स्थिति है जिसके माध्यम से पक्ष अर्थात् पर्वत में धूम के रहने का ज्ञान ही परामर्श है। व्याप्ति ग्रहण के पश्चात् जब कोई पर्वत रूप पक्ष में धूम को देखता है तो वह व्याप्ति का स्मरण करते हुए यह कहता है कि 'यह पर्वत अग्नि से व्याप्य धूमवान है' (क्योंकि जहाँ धूम रहता है वहाँ अग्नि का भी प्राप्त होना निश्चित है); इस प्रकार का ज्ञान ही परामर्श है। इस परामर्श द्वारा उत्पन्न हुआ यह ज्ञान कि 'यह पर्वत अग्नि वाला है' अर्थात् इसमें धूम होने के कारण अग्नि अवश्य ही है, यही ज्ञान अनुमिति कहलाती है।

'व्याप्ति' का लक्षण स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि साहचर्य नियम को व्याप्ति कहा जाता है। उदाहरण रूप में जहाँ–जहाँ धूम होता है वहाँ–वहाँ अग्नि होती है, इस

प्रकार अग्नि और धूम की साहचर्यता (साथ–साथ रहने का स्वभाव) का ज्ञान ही व्याप्ति है।

'पक्षधर्मता' का अर्थ है – व्याप्य का पक्ष में रहना। पर्वत पर धूम को देखकर अग्नि का अनुमान करने की प्रक्रिया में धूम व्याप्य है तथा पर्वत पक्ष है। व्याप्य अर्थात् धूम का पक्ष अर्थात् पर्वत में रहने का जो गुणधर्म है, वही पक्षधर्मता है।

विशेष : अनुमान का शाब्दिक अर्थ है – 'अनु पश्चात् मानम् अनुमानम्' जिसके अनुसार अनुमान, प्रत्यक्ष के पश्चात् होने वाला प्रमाण है। न्याय–वैशेषिक परम्परा में अनुमान प्रमाण के दो अंग माने जाते हैं – व्याप्ति तथा पक्षधर्मता। इनमें व्याप्ति के द्वारा साध्यसामान्य की सिद्धि होती है तथा पक्षधर्मता के ज्ञान से साध्यविशेष को सिद्ध किया जाता है।

अनुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः। तथाहि – स्वयमेव भूयो दर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति – 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः' इति। तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते। अयमेव लिङ्परामर्श इत्युच्यते। तस्मात्पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते। तदेतत्स्वार्थानुमानम्।

व्याख्या : अनुमान प्रमाण के दो भेद हैं – स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान।

'स्वार्थानुमान' वह अनुमान है जहाँ अनुमानकर्त्ता स्वयं ही अनुमिति की प्रक्रिया को संपन्न करता है। यथा – स्वयं ही बार–बार के दर्शन या ज्ञान के प्रयास से महानस (रसोईघर) में 'जहाँ–जहाँ धूम है वहाँ–वहाँ अग्नि अवश्य उपलब्ध होता है' इस प्रकार की व्याप्ति का निश्चय कर लेता है। इस व्याप्ति ज्ञान को ग्रहण करने के उपरान्त जब कभी वह पर्वत (पक्ष) पर जाता है तथा पर्वत से धूम को निकलते हुए देखता है तो स्वयं को सन्देहयुक्त अनुभव करता है कि यहाँ अग्नि हो सकती है। पुनः वह धूम एवं अग्नि के साहचर्यभूत व्याप्ति का स्मरण करता है कि – 'जहाँ–जहाँ धूम होता है वहाँ–वहाँ अग्नि अवश्य होती है'। इसके पश्चात् उसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह पर्वत अग्नि से व्याप्त धूम वाला है, इसी ज्ञान को परामर्श ज्ञान कहते हैं। इसी परामर्श ज्ञान के उपरान्त अनुमानकर्त्ता को यह ज्ञान हो जाता है कि 'यह पर्वत अग्निमान है'। इसे ही अनुमिति ज्ञान कहते हैं। चूँकि यह अनुमिति अनुमान करने वाला स्वयं ही संपन्न करता है इसलिए इस प्रकार के अनुमान को स्वार्थानुमान कहते हैं।

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुङ्क्ते तत्परार्थानुमानम्। यथा – पर्वतो वह्निमान्, धूमत्वात्। यो यो धूमवान् स स वह्निमान्। यथा महानसम्। तथा चायम्, तस्मात्तथेति। अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात् परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते। प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनय–निगमनानि पञ्चावयवाः। पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा। धूमवत्त्वादिति हेतुः। यो यो धूमवान् स स वह्निमान् इत्युदाहरणम्। तथा चायमित्युपनयः। तस्मात्तथेति निगमनम्। स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिंगपरामर्श एव करणम्। तस्माल्लिंगपरामर्शोऽनुमानम्।

व्याख्या : ग्रन्थकार अनुमान प्रमाण के द्वितीय भेद 'परार्थानुमान' का लक्षण, उदाहरण तथा उसके अवयवों का निरूपण करते हैं। परार्थानुमान का शाब्दिक अर्थ है – दूसरों को कराया गया अनुमान का ज्ञान। जब कोई व्यक्ति स्वयं धूम से अग्नि का अनुमितिज्ञान करने के उपरान्त किसी अन्य व्यक्ति को उस अनुमान का ज्ञान कराना

चाहता है तो वह मात्र स्वार्थानुमान की प्रक्रिया से उस दूसरे व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं करा सकता है। इसके लिए वह एक भिन्न पद्धति का प्रयोग करता है जिसमें अनुमान के पञ्चावयव वाक्यों की सहायता से दूसरे व्यक्ति को अनुमान की प्रक्रिया का निदर्शन कराता है। इस माध्यम से दूसरे व्यक्ति को भी अनुमान का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसे ही परार्थानुमान कहते हैं। परार्थानुमान के पञ्चावयव वाक्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए तथा परार्थानुमान की सिद्धि प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए अन्नम्भट्टाचार्य कहते हैं कि – पर्वत अग्निवाला है, धूमवाला होने से, क्योंकि जो जो धूमवाला होता है वह अग्निवाला अवश्य होता है, जैसे महानस; उसी प्रकार का यह पर्वत भी धूमवाला है अतः वह अग्निवाला भी है। इन पंच अवयवों से युक्त वाक्य की सहायता से प्रतिपादित लिंग (चिन्ह) से दूसरे को भी पर्वत में अग्नि का ज्ञान हो जाता है। इन पंच वाक्यों का क्रम तथा स्वरूप इस प्रकार है – प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन। ये परार्थानुमान के पञ्च अवयव वाक्य हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार है –

प्रतिज्ञा : पर्वत अग्निमान् है

हेतु : धूमवान होने से

उदाहरण : क्योंकि जो–जो धूमवान होता है वह–वह अग्निमान अवश्य होता है यथा–महानस

उपनय : यह (पर्वत) भी उसी तरह (अग्निव्याप्यधूमवान) का है

निगमन : अतः पर्वत अग्निमान है

विशेष : आचार्य स्पष्ट करते हैं कि स्वार्थानुमान से उत्पन्न ज्ञान स्वार्थानुमिति तथा परार्थानुमान से उत्पन्न ज्ञान परार्थानुमिति; इन दोनों में लिंगपरामर्श (अग्निव्याप्यधूमवान पर्वत) ही प्रकृष्ट कारण होने से करण है। इसलिए लिंगपरामर्श ही अनुमान प्रमाण है।

लिङ्ं त्रिविधम् – अन्वयव्यतिरेकि, केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि चेति। अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि। यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम्। 'यत्र धूमस्तत्राग्निः, यथा महानसः' इत्यन्वयव्याप्तिः। 'यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति, यथा महाह्रदः' इति व्यतिरेकव्याप्तिः। अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि। यथा घटोऽभिधेयः, प्रमेयत्वात्, पटवत्। अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्यप्तिर्नास्ति, सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च। व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकिय यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते; गन्धवत्त्वात्। यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद् गन्धवत्, यथा जलम्, न चेयं तथा, तस्मान्न तथेति। अत्र यद्गन्धवत्तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति, पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात्।

व्याख्या : अनुमान की प्रक्रिया में लिंग (हेतु/साधन) का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इसकी सहायता से ही अनुमान प्रमाण पूर्णता को प्राप्त होता है। लिंग के तीन भेद हैं – केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि तथा अन्वयव्यतिरेकि। यह तीन प्रकार का लिंग भेद व्याप्ति का प्रकार विशेष है क्योंकि जिस अनुमानवाक्य की व्याप्ति अन्वय और व्यतिरेक दोनों ही प्रकारों से बन जाती है, उस वाक्य में प्रयुक्त लिंग को अन्वयव्यतिरेकि लिंग कहा जाता है। उदाहरण – अग्नि की सिद्धि में धूमत्व हेतु अन्वयव्यतिरेकि है क्योंकि अग्नि और धूम की साथ–साथ रहने की स्वभावसिद्धि अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों माध्यमों से हो जाती है। 'जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होता है जैसे महानस', यह अन्वय व्याप्ति का स्वरूप है। 'जहाँ अग्नि नहीं होता है वहाँ धूम भी नहीं होता है जैसे जलाशय', यह व्यतिरेकि व्याप्ति का स्वरुप है। चूँकि यहाँ अग्नि और धूम का साहचर्य सम्बन्ध अन्वय और व्यतिरेक दोनों ही तरीकों से सिद्ध हो जाता है, अतः धूमत्व हेतु अन्वयव्यतिरेकि हेतु है।

जिस अनुमानवाक्य की व्याप्ति केवल अन्वय प्रकार से ही बनती है, वहाँ हेतु को केवलान्वयि हेतु कहा जाता है। यथा – घट अभिधेय है, प्रमेय होने से, पट की तरह। यहाँ पर हेतु मात्र केवलान्वयि है क्योंकि प्रमेयत्व एवं अभिधेयत्व में व्याप्ति सम्बन्ध केवल अन्वय प्रकार (जहाँ जहाँ प्रमेयत्व है वहाँ–वहाँ अभिधेयत्व है) से ही सम्भव है। यहाँ यदि व्यतिरेक व्याप्ति बनाई जाय तो उसका स्वरूप इस प्रकार से होगा – 'जहाँ–जहाँ अभिधेयत्व नहीं है वहाँ–वहाँ प्रमेयत्व नहीं है' किन्तु न्याय–वैशेषिक मतानुसार संसार का कोई भी पदार्थ अभिधेयत्व तथा प्रमेयत्व से रहित नहीं है। अतः उपरोक्त अनुमान वाक्य की व्यतिरेक व्याप्ति सम्भव नहीं है इसलिए यहाँ प्रयुक्त हेतु केवलान्वयि हेतु है।

जिस अनुमानवाक्य की व्याप्ति केवल व्यतिरेक प्रकार से ही बनती है, वहाँ हेतु को केवलव्यतिरेकि हेतु कहा जाता है। यथा– पृथिवी अन्य पदार्थों से भिन्न है, गन्धवती होने से, जो अन्य पदार्थों से भिन्न नहीं है, वह गन्धवाला भी नहीं है यथा जल, यह पृथिवी वैसी अर्थात् गन्धहीन नहीं है, अतः इतर पदार्थों के समान नहीं है। इस अनुमान वाक्य में 'जो गन्धवान नहीं है वह इतर पदार्थों से भिन्न भी नहीं है' इस प्रकार की व्यतिरेक व्याप्ति तो बन जाती है किन्तु यदि हम अन्वय व्याप्ति बनाना चाहें तो उसका स्वरूप इस प्रकार होगा – जो गन्धवान है वह इतर पदार्थों से भिन्न है यथा पृथिवी' किन्तु पृथिवी का उदाहरण देना सम्भव नहीं है क्योंकि वह पक्ष में समाविष्ट है। अतः उपरोक्त अनुमान वाक्य की अन्वय व्याप्ति सम्भव नहीं है। इसलिए यहाँ प्रयुक्त हेतु केवलव्यतिरेकि हेतु है।

विशेष : अन्वय व्याप्ति में साधन का कथन पहले किया जाता है तथा साध्य का कथन बाद में किया जाता है। व्यतिरेक व्याप्ति में साध्याभाव का कथन पूर्व में होता है तथा साधनाभाव का कथन उसके पश्चात् होता है।

संदिग्धसाध्यवान् पक्षः। यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः। निश्चितसाध्यवान् सपक्षः। यथा तत्रैव महानसः। निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः। यथा तत्रैव महाह्रदः।

व्याख्या : आचार्य अन्नम्भट्ट अनुमान की सिद्धि में सहायक अवयवों (पक्ष,सपक्ष एवं विपक्ष) के स्वरूप का विमर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वप्रथम वे पक्ष का लक्षण करते हैं – 'संदिग्धसाध्यवान् पक्षः' अर्थात् जहाँ पर संदिग्ध वस्तु साध्य होता है वह पक्ष कहलाता है। दूसरे शब्दों में जिस स्थल पर साध्य की सत्ता का सन्देह होता है उसे ही पक्ष कहते हैं। जैसे – पर्वत पर धूमत्व हेतु से अग्नि का अनुमान करने की प्रक्रिया में जब कोई व्यक्ति धूम और अग्नि की व्याप्ति का ग्रहण करके पर्वत पर पहुँचता है तो वहाँ धूम को देखकर उसे अग्नि की सत्ता के विषय में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि यहाँ धूम तो दिखाई दे रहा है किन्तु अग्नि नहीं अतः यहाँ अग्नि विद्यमान है अथवा नहीं। यहाँ अग्निविषयक सन्देह का अधिकरण पर्वत है अतः पर्वत ही पक्ष है।

'निश्चितसाध्यवान् सपक्षः' अर्थात् जहाँ साध्य का होना निश्चित हो वह स्थल सपक्ष कहलाता है। सपक्ष का अर्थ है – समान पक्ष। यथा – पर्वत पर धूमत्व हेतु से अग्नि का अनुमान करने की प्रक्रिया में जब कोई व्यक्ति धूम और अग्नि की व्याप्ति का ग्रहण करके पर्वत पर पहुँचता है तो वहाँ धूम को देखकर उसे अग्नि की सत्ता के विषय में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि यहाँ धूम तो दिखाई दे रहा है किन्तु अग्नि नहीं अतः यहाँ अग्नि विद्यमान है अथवा नहीं। इस सन्देह के उपरान्त वह पूर्व में गृहीत व्याप्ति का स्मरण करता है कि महानस में जब–जब मैंने धूम को देखा था तब–तब वहाँ

अग्नि की भी उपलब्धि हुई थी, अतः यहाँ भी ऐसा ही होगा। इस प्रकार महानस वह स्थल है जहाँ साध्य की सत्ता निश्चित है, अतः उपरोक्त अनुमान में महानस सपक्ष है।

'निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः' अर्थात् जहाँ पर साध्य का अभाव निश्चित होता है वह विपक्ष कहलाता है। विपक्ष का अर्थ है – विरुद्ध (विपरीत) पक्ष। जिस अधिकरण में साध्य निश्चित रूप से नहीं रहता है वह विपक्ष कहलाता है। यथा – धूमत्व हेतु से अग्नि के अनुमान में जलाशय विपक्ष है क्योंकि वहाँ साध्यभूत अग्नि का नितान्त अभाव है।

विशेष : अनुमान की प्रक्रिया में सद् हेतु का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। सद् हेतु के 5 लक्षण होते हैं – पक्षधर्मत्व (हेतु का पक्ष में रहना), सपक्षसत्त्व (हेतु का सपक्ष में रहना), विपक्षव्यावृत्ति (हेतु का विपक्ष में न रहना), अबाधितविषयत्व (हेतु का किसी अन्य प्रबल प्रमाण से बाधित न होना) तथा असत्प्रतिपक्षत्व (हेतु का कोई प्रतिपक्षी अन्य हेतु न होना)। जब कोई हेतु उपरोक्त 5 लक्षणों में से किसी भी एक लक्षण से हीन हो जाता है तो वह असद् हेतु बन जाता है। असद् हेतु को ही हेत्वाभास कहा जाता है।

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः।

व्याख्या : अनुमान प्रमाण का स्वरूप निरुपित करने के उपरान्त आचार्य अन्नम्भट्ट अनुमान के ही अंगभूत 'हेत्वाभास' का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। न्याय–वैशेषिक दर्शन में हेत्वाभास यद्यपि असद् हेतु हैं तथापि ये हेतु या सद्हेतु के ही अंग हैं, अतः हेतुज्ञान की पूर्णता तथा अनुचित हेतु के प्रयोग से बचने एवं वाद की प्रकिया में विपक्षी द्वारा ऐसा हेतु का प्रयोग करने पर उसके सिद्धान्त का खण्डन करके उसे परास्त करने के हेत्वाभास के स्वरूप एवं उसके प्रकारों का ज्ञान आवश्यक है। 'हेतुवद् आभासन्ते ते हेत्वाभासः' अर्थात् वह हेतु जो सद् हेतु की तरह प्रतीत तो होता है किन्तु वस्तुतः वह सद् हेतु होता नहीं है, उसे ही हेत्वाभास कहते हैं। आचार्य ने हेत्वाभास के 5 प्रकार बतलाये हैं – (1) सव्यभिचार, (2) विरुद्ध, (3) सत्प्रतिपक्ष, (4) असिद्ध, (5) बाधित

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः। स त्रिविधः – साधारणासाधारणनुपसंहारिभेदात्। तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः। यथा 'पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्' इति प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात्। सर्वसपक्षविपक्षव्यावृतोऽसाधारणः। यथा 'शब्दो नित्यः, शब्दत्वात्' इति। शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति। अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी। यथा 'सर्वमनित्यं, प्रमेयत्वात्' इति। अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद् दृष्टान्तो नास्ति।

व्याख्या : इनमें से प्रथम सव्यभिचार का निरूपण करते हुए आचार्य कहते हैं। 'सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः' अर्थात् सव्यभिचार हेत्वाभास को अनैकान्तिक हेत्वाभास भी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं – (1) साधारण, (2) असाधारण, (3) अनुपसंहारी।

साधारण सव्यभिचार हेत्वाभासः 'साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः' अर्थात् जो असद् हेतु साध्य के अभाव वाले पदार्थों में रहा करता है उसे साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। यथा– 'पर्वतो अग्निमान, प्रमेयत्वात'। अर्थात् पर्वत अग्नि वाला है, प्रमेय होने से। इस अनुमान वाक्य में 'प्रमेयत्व' हेतु असद् हेतु या दुष्ट हेतु है पर्वत को अग्निवाला होने में यदि प्रमेयत्व को हेतु माना जायेगा तो संसार के समस्त पदार्थ अग्निमान हो जायेंगे क्योंकि उन सभी पदार्थों में प्रमेयत्व विद्यमान है। ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष होने लगेगा, अतः यहाँ साधारण सव्यभिचार हेत्वाभास है।

असाधारण सव्यभिचार हेत्वाभासः 'सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः' अर्थात् जब कोई हेतु समस्त सपक्ष, विपक्ष में न रहकर केवल पक्ष मात्र में रहता है तो वहाँ असाधारण सव्यभिचार हेत्वाभास होता है। अनुमान वाक्य को सही होने के लिए यह आवश्यक है कि हेतु को पक्ष तथा सपक्ष में रहना चाहिए तथा विपक्ष में नहीं रहना चाहिए। किन्तु जब कोई हेतु सपक्ष में भी नहीं रहता है तो वही असाधारण सव्यभिचार हेत्वाभास की स्थिति है। यथा – 'शब्दो नित्यः, शब्दत्वात्' अर्थात् शब्द नित्य है क्योंकि उसमें शब्दत्व है। इस अनुमान वाक्य में शब्द 'पक्ष' है, नित्यत्व 'साध्य' है तथा शब्दत्व 'हेतु' है। यह शब्दत्व हेतु नित्य आकाशादि सपक्षों तथा अनित्य घटादि विपक्षों दोनों में ही नहीं रहता, जबकि इसे पक्ष शब्द के साथ सपक्ष आकाशादि में भी विद्यमान होना चाहिए। ऐसा न होने पर अव्याप्ति दोष प्रसक्त होता है, अतः यहाँ असाधारण सव्यभिचार हेत्वाभास है।

अनुपसंहारी सव्यभिचार हेत्वाभास : 'अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी' अर्थात् अन्वय (तत् सत्त्वे तत् सत्त्वं अन्वयः) तथा व्यतिरेक (तद् अभावे तद् अभावः व्यतिरेक) दृष्टान्त से रहित हेतु को अनुपसंहारी सव्यभिचार हेत्वाभास कहते हैं। अनुपसंहारी हेत्वाभास वह है जिसका न कोई सपक्ष दृष्टान्त हो और न ही कोई विपक्ष दृष्टान्त विद्यमान हो। यथा – 'सर्वं अनित्यम्, प्रमेयत्वात्' अर्थात् सब कुछ अनित्य है क्योंकि सब प्रमेय है। इस वाक्य में सर्व पक्ष है, अनित्यत्व साध्य है तथा प्रमेयत्व हेतु है। प्रकृत उदाहरण में सम्पूर्ण पदार्थ के पक्ष बन जाने से न तो कोई अन्वय दृष्टान्त मिलता है और न ही कोई व्यतिरेक दृष्टान्त। इसलिए यहाँ अनुपसंहारी सव्यभिचार हेत्वाभास है।

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति। कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम्।

विरुद्ध हेत्वाभास : 'साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः' अर्थात् जो हेतु साध्य के अभाव में व्याप्त रहता है, वह विरुद्ध हेत्वाभास है। आशय यह है कि किसी अनुमान वाक्य में जब कोई ऐसा हेतु साध्य को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है जो साध्य को सिद्ध न करके साध्य के अभाव को सिद्ध करने लगता है तो यह विरुद्ध स्वभाव वाला होने के कारण विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। यथा – 'शब्दो नित्यः, कृतकत्वात्' अर्थात् शब्द नित्य है, कृतक होने के कारण। कृतक होने का अर्थ है जन्य होना या उत्पन्न होना। यह सार्वत्रिक नियम है कि संसार में जो भी वस्तु कृतक (जन्य या उत्पन्न) होती है वह अनित्य अवश्य होती है। प्रकृत उदाहरण में शब्द पक्ष है, नित्यत्व साध्य है तथा कृतकत्व हेतु है। यहाँ व्याप्ति का स्वरूप यह होगा – 'यत्र यत्र कृतकत्वम् तत्र तत्र नित्यत्वम्' किन्तु वास्तविक व्याप्ति यह है कि 'यत्र यत्र कृतकत्वम् तत्र तत्र अनित्यत्वम्' अर्थात् जो कृतक होता है वह अनित्य होता है। अनित्यत्व का अर्थ है नित्यत्व का अभाव (साध्याभाव)। अतः प्रकृत हेतु नित्यत्व का साधक न होकर उसके विरुद्ध नित्यत्वाभाव को सिद्ध कर रहा है। यही विरुद्ध हेत्वाभास है।

यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः। यथा 'शब्दो नित्यः श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्' इति। 'शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात्, घटवत्' इति।

सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास : 'यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः' अर्थात् जिस हेतु के साध्य के अभाव को सिद्ध करने वाला कोई दूसरा हेतु विद्यमान हो, वह सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास कहलाता है। सत्प्रतिपक्ष का शाब्दिक अर्थ है 'सत् अर्थात् विद्यमान है प्रतिपक्ष जिसका'। आशय यह है कि जहाँ पर दो हेतु परस्पर एक दूसरे के विपरीत अर्थ (साध्य) को सिद्ध करते हैं वहाँ वे दोनों हेतु, सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास माने जाते हैं।

यथा – 'शब्दः नित्यः, श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्' शब्द नित्य है, श्रावणत्व के कारण, शब्दत्व के समान। यहाँ श्रावणत्व हेतु का प्रयोग करके शब्द को अनित्य सिद्ध किया जा रहा है। इसका विरोधी दूसरा अनुमान प्रस्तुत करता है – 'शब्दः अनित्यः, कार्यत्वात्, घटवत्' – शब्द अनित्य है, कार्य होने से, घट के समान। यहाँ कार्यत्व हेतु के द्वारा शब्द में अनित्यत्व को सिद्ध किया जा रहा है। यहाँ दोनों ही अनुमान वाक्यों में 'शब्द' ही एकमात्र पक्ष है जिसे श्रावणत्व हेतु के द्वारा नित्य तथा कार्यत्व हेतु द्वारा अनित्य सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः साध्यविपरीतसाधक तुल्यबल वाला दूसरा हेतु विद्यमान होने से ये दोनों हेतु अपने साध्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैंय यही सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास है।

असिद्धस्त्रिविध : आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धः, व्याप्यत्वासिद्धश्चेति। आश्रयसिद्धो यथा 'गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात्, सरोजारविन्दवत्'। अत्र गगनारविन्दमाश्रयः। स च नास्त्येव। स्वरूपासिद्धो यथा – शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्, रूपवत्। अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्तियशब्दस्य श्रावणत्वात्। सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापक उपाधिः। साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम्। साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्। 'पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्' इत्यत्र आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। तथा हि – यत्र धूमस्तत्र आर्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता। यत्र वह्निस्तत्र आर्द्रेन्धनसंयोगो नास्तिय अयोगोलके आर्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनव्यापकता। एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वाद् आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम्।

असिद्ध हेत्वाभास : तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नम्भट्ट ने असिद्ध हेत्वाभास का कोई लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है। असिद्धि का अर्थ है सिद्धि का न होना अर्थात् साध्य व्याप्य हेतु का पक्ष में न रहना। असिद्ध हेत्वाभास के तीन भेद हैं – आश्रयासिद्ध, स्वरूपासिद्ध तथा व्याप्यत्वासिद्ध।

आश्रयासिद्ध हेत्वाभास का लक्षण है – 'यस्य हेतोः आश्रयः न अवगम्यते स आश्रयासिद्धः' अर्थात् जिस हेतु का आश्रय (पक्ष) निश्चित न हो, उसे आश्रयासिद्ध कहते हैं। उदाहरण – 'गगनारविन्दं सुरभिः, अरविन्दत्वात्, सरोजारविन्दवत्' – आकाशकुसुम सुगन्धित होता है, कमल होने के कारण, सरोवर में उत्पन्न कमल के समान। इस अनुमानवाक्य में गगनारविन्द पक्ष (आश्रय) है, सुरभित्व साध्य, अरविन्दत्व हेतु तथा सरोजारविन्द दृष्टान्त है। यहाँ पर गगनारविन्द आश्रय है जिसकी वस्तुतः कोई सत्ता ही नहीं होती है। इस कारण आश्रय (पक्ष) के न होने से 'अरविन्दत्वात्' यह हेतु आश्रयासिद्ध हेत्वाभास है।

स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास : स्वरूपासिद्ध का अर्थ है जो स्वरूपतः असिद्ध हो अर्थात् जहाँ हेतु स्वयं ही असिद्ध होता है, वह स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहलाता है। यथा – शब्दो गुणः, चाक्षुषत्वात्, रूपवत्' – शब्द गुण है, चाक्षुष होने के कारण, रूप के समान। इस अनुमानवाक्य में शब्द के गुण होने में चाक्षुषत्व को हेतु बतलाया जा रहा है जबकि पक्षभूत शब्द चक्षु का विषय न होकर कर्ण का विषय होता है। अतः यहाँ हेतु के अपने स्वरूप से ही असिद्ध होने के कारण स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है।

व्याप्यात्वासिद्ध हेत्वाभास : आचार्य अन्नम्भट्ट व्याप्यात्वासिद्ध हेत्वाभास का लक्षण करते हैं – 'सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः' अर्थात् जो हेतु उपाधि से युक्त होता है उसे व्याप्यात्वासिद्ध कहा जाता है। इस लक्षण में आये हुए उपाधि पद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं – 'साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वम्' अर्थात्

जो साध्य का व्यापक हो एवं साधन (हेतु) का व्यापक न हो, उसे उपाधि कहते हैं। उपाधि शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – 'उपसमीपवर्तिनि आदधाति संक्रामयति स्वीयं धर्मं इति उपाधिः' जो अपने धर्म को समीपस्थ पदार्थ में संक्रान्त कर दे उसे उपाधि कहते हैं। जिस प्रकार जब हम किसी दर्पण के सम्मुख लाल गुलाब का पुष्प रखते हैं तो पुष्प की लालिमा दर्पण में संक्रान्त हो जाती है जिसके कारण दर्पण भी लाल प्रतीत होने लगता है, यहाँ 'लाल गुलाब का पुष्प' अपने लालिमा रूप धर्म को दर्पण में संक्रान्त कर रहा है अतः वह उपाधि है।

उपाधि के लक्षण में आये हुए 'साध्यव्यापकत्व' एवं 'साधनाव्यापकत्व' पदों का अर्थ स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं – 'साध्यसमानाधिकरणऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् साध्यव्यापकत्वम्' अर्थात् साध्य के अधिकरण (आश्रय) में रहने वाले अत्यन्ताभाव का जो प्रतियोगी नहीं हैं उसे साध्यव्यापक कहते हैं। 'साध्यवन्निष्ठऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् साधनाव्यापकत्वम्' अर्थात् साधन के अधिकरण में रहने वाला जो अत्यन्ताभाव है, उसका प्रतियोगि होना ही साधनाव्यापकत्व है। यथा– 'पर्वतो अग्निमान, धूमवत्त्वात्' इस अनुमानवाक्य में आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधि है। यहाँ आर्द्रेन्धनसंयोग रूप धर्म उक्त अनुमान वाक्य में साध्य धूम का व्यापक है क्योंकि 'जहाँ–जहाँ धूम होता है वहाँ–वहाँ आर्द्रेन्धनसंयोग अवश्य होता है। किन्तु 'जहाँ–जहाँ अग्नि हो वहाँ–वहाँ आर्द्रेन्धनसंयोग का होना अनिवार्य नहीं है, जैसे लोहे के गोले में अग्नि तो होती है किन्तु आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं होता है। इसलिए आर्द्रेन्धनसंयोग रूप धर्म उपरोक्त अनुमान वाक्य में प्रयुक्त साधन (अग्नि) का अव्यापक है। इस प्रकार आर्द्रेन्धनसंयोग रूप धर्म में 'साध्यव्यापकत्व' एवं 'साधनाव्यापकत्व' दोनों अंशों के घटित हो जाने से उसमें उपाधि का लक्षण समन्वित हो जाता है। अतः सोपाधिक होने से अग्निमत्त्व व्याप्यत्वासिद्ध हेत्वाभास है।

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः। यथा – वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वात्' इति। अत्रानुष्णत्वं साध्यं, तदभाव उष्णत्वं स्पार्शनप्रत्यक्षेण गृह्यत इति बाधितत्वम्।

बाधित हेत्वाभास : पंच हेत्वाभासों में बाधित नामक हेत्वाभास का लक्षण करते हुए आचार्य कहते हैं – ' यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः' – जिस हेतु के साध्य का अभाव किसी अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित होता है वह बाधित हेत्वाभास कहलाता है। आशय यह है कि जब कोई अनुमानकर्त्ता किसी साध्य को सिद्ध करने के लिए हेतु का प्रयोग करता है किन्तु उस हेतु का साध्य किसी अन्य बलवत्तर प्रमाण से बाधित कर दिया जाता है, ऐसी दशा में हेतु अपने साध्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो पाता है य यही बाधित हेत्वाभास है। उदाहरण – 'अग्निरनुष्णः, द्रव्यत्वात्, जलवत्' अर्थात् अग्नि शीतल होती है, द्रव्य होने से, जल के समान। प्रकृत अनुमान वाक्य में अनुष्णत्व साध्य है, अग्नि पक्ष है, द्रव्यत्व हेतु है तथा जलदृष्टान्त है। यदि हम द्रव्यत्व हेतु से अग्नि में अनुष्णत्व को सिद्ध करना चाहते हैं तो वह सम्भव नहीं है क्योंकि अग्नि का उष्णत्व स्पार्शन प्रत्यक्ष से निश्चित है। यहाँ स्पार्शन प्रत्यक्ष रूप प्रबल प्रमाण द्रव्यत्व हेतु के साध्यभूत अनुष्णत्व को बाधित कर देता है, यही बाधित हेत्वाभास है।

विशेष : आचार्य अन्नम्भट्ट के अनुसार हेत्वाभास का अर्थ दुष्ट हेतु है। आचार्य शंकरमिश्र ने दुष्ट हेतु का लक्षण किया है – 'यस्य हेतोर्यावन्ति रूपाणि गमकतौपयिकानि तदन्यतररूपहीनः' अर्थात् सद् हेतु होने के लक्षणों में से किसी एक से भी हीन होने पर दुष्ट हेतु होता है।

8.3 उपमान प्रमाण (उपमितिकरणम् से उत्पद्यते पर्यन्त)

उपमितिकरणमुपमानम्। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः। तत्करणं सादृश्यज्ञानम्। अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः। तथा हि– कश्चिद् गवयशब्दार्थमजानन् कुतश्चिदारण्यकपुरुषात् 'गोसदृशो गवयः' इति श्रुत्वा, वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन् गोसदृशं पिण्डं पश्यति। तदनन्तरम् 'असौ गवयशब्दवाच्यः' इत्युपमितिरुत्पद्यते।

व्याख्या : तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नम्भट्ट प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण का निरूपण करने के उपरान्त तृतीय प्रमाण 'उपमान' का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। उपमान का लक्षण करते हुए उनका कथन है – 'उपमितिकरणम् उपमानम्' अर्थात् उपमिति का करण उपमान कहलाता है। यहाँ करण का अर्थ असाधारण कारण है। उपमिति ज्ञान की उत्पत्ति में उपमान ही वह असाधारण कारण होता है जिसका प्रयोग करने पर उपमिति की उत्पति तुरन्त हो जाती है। 'उपमिति' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं – 'संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः' अर्थात् संज्ञा और संज्ञी के सम्बन्ध ज्ञान को उपमिति कहते हैं। किसी वस्तु या पदार्थ के नाम को 'संज्ञा' कहते हैं तथा वह पदार्थ 'संज्ञी' कहलाता है। यथा – 'कम्बुग्रीवादिमान पात्रविशेष' संज्ञी है तथा 'घट' उसकी संज्ञा है। उपमिति का ज्ञान हमें तभी हो पता है जब हम संज्ञा, संज्ञी तथा उनके मध्य के निश्चित सम्बन्ध को जानते हैं।

सादृश्यज्ञान को उपमिति का करण कहा जाता है क्योंकि उपमिति उपमान का ही सिद्ध रूप है तथा उपमान करने में तुलना या तुल्य पदार्थ का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। चूँकि सादृश्यज्ञान इसी आवश्यकता की पूर्ति करता है, इसलिए वह उपमिति का करण कहलाता है।

उपमिति की प्रक्रिया में अतिदेश वाक्यार्थ का स्मरण अवान्तर व्यापार होता है। 'अतिदिश्यते प्रतिपाद्यते अनेन साधर्म्यादिः इति अतिदेशः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार साधर्म्य (समानता) आदि को बतलाने वाला वाक्य अतिदेश वाक्य कहलाता है। अतिदेश वाक्य का उदाहरण है – 'गोसदृशो गवयः' अर्थात् गाय के समान ही गवय (नीलगाय) होता है। यहाँ 'गोसदृशो गवयः' इस वाक्य के द्वारा गवय की गोसदृशता का कथन किया गया है, अतः यह अतिदेश वाक्य है। इसी वाक्य के अर्थ का स्मरण करके गवय को न पहचानने वाला व्यक्ति गोसादृश्य को देखकर गवय की पहचान कर लेता है, इसीलिए अतिदेश वाक्यार्थस्मरण को उपमिति ज्ञान का अवान्तर व्यापार कहा जाता है।

उपमान की प्रक्रिया का निरूपण करते हुए आचार्य कहते हैं – किसी नगर में रहने वाला कोई व्यक्ति गवय को नहीं पहचानता है। कोई वनवासी उसे यह बताता है कि 'यथा गौस्तथा गवयः' अर्थात् जैसी गाय होती है वैसी ही नीलगाय (गवय) भी होती है। यही अतिदेश वाक्य है जिसे सुनकर वह नगर निवासी जब जंगल में प्रवेश करता है और वहाँ गाय जैसे किसी पशु को देखता है। उसे देखकर उस व्यक्ति को वनवासी द्वारा बताये गए उस अतिदेश वाक्य के अर्थ का स्मरण हो उठता है कि जैसी गाय होती है वैसी ही गवय भी होती है। इसके पश्चात् उसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह पशु गवय है। यही उपमिति ज्ञान है। इसी उपमिति का करण उपमान प्रमाण कहलाता है।

विशेष : वैशेषिक, सांख्य–योग, चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन में उपमान को स्वतन्त्र प्रमाण नहीं माना जाता है। वैशेषिक एवं सांख्य दर्शन उपमान का अन्तर्भाव अनुमान

प्रमाण में करते हैं। न्यायदर्शन के अनुसार उपमिति ज्ञान के उपरान्त 'अनुमिनोमि' ऐसा अनुभव न होकर 'उपमिनोमि' ऐसा अनुभव होता है, अतः उपमान को स्वतन्त्र प्रमाण मानना तर्कसंगत है। इसके अतिरिक्त उपमान प्रमाण के द्वारा संज्ञासंज्ञिसम्बन्ध का विशिष्ट ज्ञान होता है जो की अनुमान से पृथक् है, इसलिए भी उपमान को स्वतन्त्र प्रमाण मानना चाहिए।

8.4 शब्द प्रमाण (आप्तवाक्यं से तु शब्दः पर्यन्त)

आप्तवाक्यं शब्दः। आप्तस्तु यथार्थवक्ता। वाक्यं पदसमूहः। यथा 'गामानय' इति। शक्तं पदम्। अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छासंकेतः शक्तिः।

व्याख्या : आचार्य अन्नम्भट्ट न्याय–वैशेषिक दर्शन की समावेशी परम्परा के आचार्य हैं। उनका ग्रन्थ 'तर्कसंग्रह' एक प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें वैशेषिक दर्शन की पदार्थ मीमांसा के साथ न्याय दर्शन में स्वीकृत प्रमाण व्यवस्था का विवेचन किया गया है। प्रमाणों के निरूपण क्रम में आचार्य प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान का निरूपण करने के उपरान्त 'शब्द' प्रमाण का विवेचन करते हैं। शब्द प्रमाण का लक्षण है – 'आप्तवाक्यं शब्दः' अर्थात् आप्त पुरुष के वाक्य को शब्द प्रमाण कहा जाता है। आप्त का अर्थ है – यथार्थ बोलने वाला। कोई व्यक्ति जिस रूप में किसी पदार्थ का अनुभव करता है, जब वह किसी अन्य व्यक्ति को उस वस्तु के बारे में उसी प्रकार का यथार्थ कथन करता है तो उसे ही आप्त कहा जाता है।

'वाक्य' का लक्षण करते हुए आचार्य कहते हैं – 'वाक्यं पदसमूहः'। पदों का समूह वाक्य कहलाता है। संस्कृत भाषा में वर्णों का समूह मिलकर पद या शब्द का निर्माण करते हैं तथा कई शब्द या पद मिलकर एक वाक्य बनाते हैं। वाक्य का उदाहरण है – 'गाम् आनय'; इस वाक्य में दो पद हैं – 'गाम्' तथा 'आनय'। महर्षि पाणिनि के अनुसार 'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् सुबन्त तथा तिङन्त की पद संज्ञा होती है। 'गाम् आनय' में 'गाम्' पद सुबन्त है तथा 'आनय' पद तिङन्त है, इसलिए इन दोनों का समूह होने से यह वाक्य हो जाता है।

पद के स्वरूप का विवेचन करते हुए आचार्य कहते हैं – 'शक्तं पदम्' अर्थात् जो अर्थबोधक शक्ति से युक्त होता है, उसे पद कहते हैं। शक्ति का लक्षण है – 'अस्मात् पदात् अयमर्थो बोद्धव्यः इति ईश्वरेच्छा शक्तिः' अर्थात् 'इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए' – यह जो ईश्वरकृत् संकेत है, वह शक्ति है। इसी शक्ति से युक्त को पद कहा जाता है। उदाहरणतः घ्+अ+ट्+अ् वर्णों के मिलने से 'घट' पद निष्पन्न होता है और उक्त प्रकार के संकेतग्रह से घट पद का बोध हो जाता है।

वाक्य के लक्षण (पदसमूहः वाक्यम्) में प्रयुक्त 'समूह' का तात्पर्य अनेक वर्णों का समुदाय नहीं समझना चाहिए क्योंकि अनेक स्थलों पर पद 'एकवर्णात्मक' भी होता है; यथा – आकाश का वाचक 'ख' पद, सुख का वाचक 'क' पद इत्यादि। 'समूह' से आशय है – 'एक ज्ञान का विषय होना' अर्थात् एक ज्ञान में भासित होने वाले वर्णों का नाम ही पद है।

विशेष : यथार्थ भाषण करने वाला वक्ता ही आप्त है तथा जिस शब्द द्वारा यह यथार्थज्ञान हो वही शब्द प्रमाण है। प्राचीन नैयायिक ईश्वरेच्छा को शक्ति मानते हैं जबकि नव्यनैयायिक इच्छामात्र को शक्ति कहते हैं।

आकांक्षायोग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञानहेतुः। पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्ताऽन्वयाननुभावकत्वमाकांक्षा। अर्थाबाधो योग्यता। पदानामविलम्बेनोच्चरणं सन्निधिः। आकांक्षादिरहितं वाक्यमप्रमाणम्। यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम् आकांक्षाविरहात्। अग्निना सिञ्चेत इति न प्रमाणम्, योग्यताविरहात्। प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि 'गामानय' इत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सान्निध्याभावात्।

व्याख्या : तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नम्भट्ट शब्द प्रमाण के लक्षण एवं स्वरूप का निरूपण करने के उपरान्त शाब्दबोध की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हैं। सर्वप्रथम वे वाक्य से होने वाले वाक्यार्थज्ञान के कारणों का विवेचन करते हुए कहते हैं कि 'आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि किसी वाक्य के अर्थज्ञान में कारण होते है। यदि किसी व्यक्ति को किसी वाक्य का अर्थबोध करना है तो उसे आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि का ज्ञान अवश्य होना चाहिए क्योंकि ये तीनों वाक्य का अर्थज्ञान कराने में सहकारी कारण बनते हैं। इनके बिना किसी भी वाक्य का अर्थबोध नहीं किया जा सकता है।

आकांक्षा का लक्षण है – 'पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्ताऽन्वयाननुभावकत्वमाकांक्षा'। एक पद का दूसरे पद के अभाव में परस्पर अन्वय बोध न हो पाना 'आकांक्षा' है। आशय यह कि किसी एक पद के अर्थ को समझने के लिए दूसरे पद की आवश्यकता होती है, यही आवश्यकता ही पदों की परस्पर आकांक्षा कहलाती है। यथा – 'गाम् आनय' इस वाक्य में यदि केवल गाम् पद या केवल आनय पद का ही उच्चारण किया जाय तो श्रोता को कोई अर्थबोध नहीं हो सकता है। इस वाक्य का अर्थबोध कराने के लिए गाम् पद को आनय पद की तथा आनय पद को गाम् पद की आकांक्षा है। यह आकांक्षा श्रोता की जिज्ञासा रूप होती है तथा यह ह्रदय में रहती है। एक पद को सुनने के उपरान्त वाक्य के अगले पद को सुनने की इच्छा श्रोता के मन में उत्पन्न होती है। इसी का नाम आकांक्षा है। इसी आकांक्षा का अभाव होने के कारण 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती इति' इस वाक्य को प्रामाणिक नहीं माना जाता है।

योग्यता का लक्षण है – 'अर्थाबाधो योग्यता' अर्थात् पदों के अर्थों में बाधा का न होना योग्यता कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध में बाधा का अभाव ही योग्यता है। किसी वाक्य के वाक्यार्थज्ञान हेतु उस वाक्य में प्रयुक्त पदों के अर्थों को परस्पर बाधित नहीं होना चाहिए। यदि पदों के अर्थ एक दूसरे को बाधित करते हैं अर्थात् उनका कोई सम्बन्ध नहीं बन पता है तो ऐसे पदसमुदाय को वाक्य नहीं कहा जाता है और न उससे वाक्यार्थबोध होता है। यथा – 'अग्निना सिञ्चति' यह वाक्य प्रमाण नहीं है क्योंकि पदों में योग्यता का अभाव है। अग्नि में दाहकता होती है जिसके कारण उसमें सेचन शक्ति का अभाव होता है। सेचन क्रिया की सामर्थ्य जल में होता है, अग्नि में नहीं। अतः अग्नि और सेचन क्रिया के सम्बन्ध में बाधा विद्यमान है इसलिए इसे वाक्य नहीं कहा जा सकता है।

सन्निधि का लक्षण है – 'पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः'। पदों का अविलम्ब से उच्चारण करना सन्निधि कहलाता है। सन्निधि का अभाव होने पर भी पदसमूह को वाक्य नहीं कहा जाता है। यथा – 'गाम् आनय' इस वाक्य में यदि गाम् पद का उच्चारण प्रथम प्रहर में किया जाय तथा आनय पद का उच्चारण द्वितीय प्रहर में किया जाय तो इस समूह से अर्थबोध पूर्णतः नहीं हो सकता है। अर्थबोध के लिए यह

आवश्यक है कि वाक्य में प्रयुक्त समस्त पदों का उच्चारण बिना किसी विलम्ब के किया जाय।

विशेष : आचार्य का अभिमत है कि आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि से रहित वाक्य प्रमाण नहीं होता है अपितु उसे अप्रमाण माना जाता है।

वाक्यं द्विविधम् – वैदिकं लौकिकं च। वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम्। अन्यदप्रमाणम्। वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणं तु शब्दः।

व्याख्या : तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नभट्ट शब्द प्रमाण का निरूपण करते हुए कहते हैं कि आप्तपुरुष के द्वारा बोला गया वाक्य शब्द प्रमाण कहलाता है। वाक्य का लक्षण करते हुए उनका कथन है – 'पदसमूहः वाक्यम्' अर्थात् पदों का समूह ही वाक्य है। प्रस्तुत अनुच्छेद में आचार्य वाक्य के भेदों की चर्चा करते हुए शाब्दज्ञान के करण का विवेचन करते हैं।

वाक्य के दो भेद होते हैं – वैदिक वाक्य तथा लौकिक वाक्य। इन द्विविध वाक्यों में समस्त वैदिक वाक्य प्रमाण होते हैं क्योंकि उनका कथन ईश्वर ने किया है। न्याय–वैशेषिक परम्परा में ईश्वर को परम आप्त माना जाता है तथा इनकी यह भी मान्यता है कि ईश्वर ने ही वेद की रचना की है। चूँकि समस्त वैदिक वाक्य ईश्वरोक्त है इसलिए उसके अप्रमाण होने की सम्भावना भी नहीं है क्योंकि ईश्वर अयथार्थवक्ता नहीं हो सकता है। लौकिक वाक्यों की प्रमाणता का विवेचन करते हुए आचार्य कहते हैं कि जो लौकिक वाक्य किसी आप्त व्यक्ति के द्वारा कहा जाता है केवल वही प्रमाण की कोटि में आता है। अयथार्थ भाषण करने वाले व्यक्ति के द्वारा कहा गया समस्त वाक्य अप्रमाण होता है।

शब्दप्रमाण प्रकरण का उपसंहार करते हुए आचार्य कहते हैं कि आप्त पुरुष के द्वारा बोले गए वाक्य के अर्थज्ञान को ही शाब्दज्ञान कहा जाता है। इस शाब्दज्ञान का असाधारण कारण (कारण) शब्द होता है अतः शाब्दी प्रमा का करण शब्द कहलाता है।

विशेष : न्याय–वैशेषिक मतानुसार वेद पौरुषेय हैं क्योंकि सर्वज्ञ ईश्वर ने उसकी रचना की है। ईश्वररचित होने के कारण ही समस्त वैदिक वाक्य प्रमाण होते हैं।

8.5 अयथार्थ अनुभव (अयथार्थानुभवः से अप्रमाजन्या अयथार्था पर्यन्त)

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः – संशय–विपर्यय–तर्कभेदात्। एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं संशयः। यथा स्थाणुः वा पुरुषो वेति। मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्ताविदं रजतमिति। व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा यदि वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति।

व्याख्या : प्रस्तुत अनुच्छेद में तर्कसंग्रहकार आचार्य अन्नम्भट्ट ने प्रमाजन्य यथार्थज्ञान के विपरीत ज्ञान अर्थात् अयथार्थज्ञान के भेदों तथा उनके स्वरूप का विवेचन किया है। न्याय–वैशेषिक दर्शन की यह मान्यता है कि प्रमा (यथार्थानुभव) की सिद्धि हेतु हमें अयथार्थज्ञान को भी जानना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यदि यह है तभी हम है, पदार्थों का परित्याग करके उपादेय पदार्थों का ग्रहण कर सकते हैं जिससे तत्त्व का यथार्थज्ञान होगा जो साधक को अपवर्ग के मार्ग पर अभिप्रेरित करेगा।

ग्रन्थकार के अनुसार अयथार्थ अनुभव का लक्षण है – 'तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः' अर्थात् उस प्रकार का अभाव होने पर भी उस प्रकार (विशेषण) का अनुभव होना अयथार्थानुभव है। आशय यह है कि जो वस्तु जैसी नहीं है उसको जब हम वैसा ग्रहीत करते हैं तो इसे ही अयथार्थ ज्ञान कहा जाता है। अयथार्थानुभव तीन प्रकार का होता है – संशय, विपर्यय एवं तर्क।

संशय का लक्षण है – ' एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं संशयः' अर्थात् एक ही धर्मी (पदार्थध्वस्तु) में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों के वैशिष्ट्य को विषय बनाने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। यथा – 'स्थाणुः वा पुरुषो वा'। जब कोई व्यक्ति मन्द अन्धकार में अपने सम्मुख किसी वस्तु (स्थाणु) को देखता है किन्तु निश्चय न होने के कारण वह उस वस्तु के विषय में 'यह स्थाणु है' अथवा 'यह पुरुष है'; इस प्रकार एक ही वस्तु में आकृति–सादृश्य, दृष्टिदोष, अन्धकार आदि के कारण परस्पर विरुद्ध धर्मात्मक ज्ञान करता है। इसे ही संशय ज्ञान कहा जाता है।

अयथार्थानुभव के द्वितीय भेद 'विपर्यय' का लक्षण करते हुए आचार्य कहते हैं – 'मिथ्याज्ञानं विपर्ययः' अर्थात् मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जो वस्तु जैसी है उसको उस रूप में ग्रहण न करके उसके विपरीत अन्य वस्तु के रूप में ग्रहण करने को ही मिथ्याज्ञान कहा जाता है। यथा – 'शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति'। शुक्ति को देखकर उसे रजत समझ लेना ही विपर्यय ज्ञान है। विपर्यय को ही भ्रम भी कहा जाता है।

अयथार्थानुभव के तृतीय भेद 'तर्क' का लक्षण करते हुए आचार्य कहते हैं – 'व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः तर्कः' अर्थात् व्याप्य के आरोप से व्यापक के आरोप को तर्क कहते हैं। यथा – हमारा सामान्य अनुभव है कि जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्य होता है। जब कोई व्यक्ति पर्वत पर जाता है और वहाँ धूम को देखता है किन्तु अग्नि का उसे प्रत्यक्ष नहीं हो रहा होता है तो वह पर्वत पर अग्नि के अभाव की कल्पना करने लगता है। ऐसी अवस्था में धूम और अग्नि की व्याप्ति को जानने वाला कोई अन्य पुरुष उससे कहता है कि 'पर्वते यदि अग्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्' अर्थात् इस पर्वत पर यदि अग्नि न होता तो धूम भी न होता। इसी प्रकार जहाँ–जहाँ अग्नि का अभाव रहता है वहाँ–वहाँ धूम का भी अभाव रहता है। प्रकृत में 'अग्नि का अभाव' व्याप्य है तथा 'धूमाभाव' व्यापक है। पर्वत में अग्न्याभावरूप व्याप्य' का आरोप करके 'धूमाभावरूप व्यापक' का आरोप किया गया है। यही तर्क है।

विशेष : आचार्य अन्नम्भट्ट ने 'तर्क' को भी अयथार्थानुभव की कोटि में रखा है क्योंकि तर्क भी निश्चय से पूर्व की अनिश्चयावस्था है। न्याय–वैशेषिक मत में यद्यपि तर्क को प्रमाण की कोटि में नहीं रखा जाता है तथापि उसे प्रमाण का अनुग्राहक (सहायक) स्वीकार किया जाता है क्योंकि तर्कवाक्य की परिणति प्रमाण में हुआ करती है। तर्क विशेष रूप से अनुमान प्रमाण की सिद्धि में सहायक होता है।

स्मृतिरपि द्विविधा – यथार्थाऽयथार्था चेति। प्रमाजन्या यथार्था। अप्रमाजन्या अयथार्था।

व्याख्या : तर्कसंग्रहकार अन्नम्भट्ट प्रस्तुत अनुच्छेद में ज्ञान के द्वितीय भेद स्मृति के भेदों का विवेचन करते हैं। आचार्य के अनुसार समस्त व्यवहारों का हेतुभूत गुण ही बुद्धि या ज्ञान कहलाता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है – स्मृति और अनुभव। इनमें से स्मृति का लक्षण है – 'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः' अर्थात् जो ज्ञान संस्कार मात्र से उत्पन्न होता है उसे ही स्मृति कहते हैं। स्मृति ज्ञातविषयक ज्ञान होती है। यह स्मृति दो प्रकार की है– (1) यथार्थ स्मृति, (2) अयथार्थ स्मृति।

यथार्थ स्मृति का स्वरूप बताते हुए आचार्य कहते हैं – 'प्रमाजन्या यथार्था'। प्रमा अर्थात् यथार्थ अनुभव से उत्पन्न होने वाली स्मृति यथार्थ स्मृति कहलाती है। जब कोई अनुभवकर्ता किसी पदार्थ का ज्ञान करता है, यदि उसका ज्ञान सही होता है अर्थात् वस्तु जिस स्वभाव या प्रकार की है, अनुभव करने वाला उसे ठीक उसी रूप में ही ग्रहण करता है तो ऐसा अनुभव यथार्थानुभव कहलाता है। इस प्रकार के यथार्थानुभव से बनने वाला संस्कार भी यथार्थ होता है। कालान्तर में उद्‌बोधक कारणों के उपस्थित होने पर जब यह संस्कार स्मृति को उत्पन्न करता है तो वह स्मृति यथार्थानुभवजन्य होने के कारण यथार्थ स्मृति कहलाती है।

अयथार्थ स्मृति का स्वरूप बताते हुए आचार्य कहते हैं – 'अप्रमाजन्या यथार्था'। अप्रमा अर्थात् अयथार्थ अनुभव से उत्पन्न होने वाली स्मृति अयथार्थ स्मृति कहलाती है। जब कोई अनुभवकर्त्ता किसी पदार्थ का ज्ञान करता है, यदि उसका ज्ञान सही नहीं होता है अर्थात् वस्तु जिस स्वभाव या प्रकार की है, अनुभव करने वाला उसे ठीक उसी रूप में ही ग्रहण न करके किसी भिन्न रूप में ग्रहण करता है तो ऐसा अनुभव अयथार्थानुभव कहलाता है। इस प्रकार के अयथार्थानुभव से बनने वाला संस्कार भी अयथार्थ होता है। कालान्तर में उद्‌बोधक कारणों के उपस्थित होने पर जब यह संस्कार स्मृति को उत्पन्न करता है तो वह स्मृति अयथार्थानुभवजन्य होने के कारण अयथार्थ स्मृति कहलाती है।

विशेष : यथार्थता प्रमा की विशेषता है। अनुभव के यथार्थ होने पर उसे तो प्रमाण की कोटि में रखा जाता है किन्तु स्मृति के यथार्थ होने पर भी कोई दार्शनिक उसे प्रमाण नहीं मानता है।

8.6 सारांश

तत्त्वचिन्तन की प्रक्रिया में प्रमाणमीमांसा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रमाणों की सहायता से ही प्रमेयों (तत्त्वों) का ज्ञान सम्भव होता है। दर्शनसरणियों में यह प्रसिद्ध उक्ति भी है – 'मानाधीना मेयसिद्धिः' अर्थात् मेय (प्रमेय) की सिद्धि मान (प्रमाण) के अधीन होती है। प्रमा या यथार्थज्ञान की उपलब्धि किसी साधन की सहायता से ही होती है इसलिए सामान्य रूप से प्रमा की उपलब्धि के साधन ही प्रमाण कहलाते हैं। आचार्य अन्नम्भट्टकृत् 'तर्कसंग्रह' यद्यपि वैशेषिक दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है तथापि इसमें न्यायदर्शनसम्मत चतुर्विध प्रमाणव्यवस्था का विवेचन किया गया है। अनुमिति ज्ञान का करण ही अनुमान प्रमाण कहलाता है। 'करण' का अर्थ असाधारण कारण है अर्थात् जिस कारण का प्रयोग करते ही कार्य की तुरन्त निष्पत्ति हो जाय। अनुमान की प्रक्रिया में 'परामर्श' को अनुमिति का करण कहा जाता है। अनुमिति वस्तुतः परामर्श से उत्पन्न होने वाला ज्ञान है। अनुमान प्रमाण के दो भेद हैं – स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान। 'स्वार्थानुमान' वह अनुमान है जहाँ अनुमानकर्त्ता स्वयं ही अनुमिति की प्रक्रिया को संपन्न करता है। जब कोई व्यक्ति अनुमान के पञ्चावयव वाक्यों की सहायता से दूसरे व्यक्ति को अनुमान की प्रक्रिया का निदर्शन कराता है तो इस माध्यम से दूसरे व्यक्ति को भी अनुमान का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसे ही 'परार्थानुमान' कहते हैं। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन ये परार्थानुमान के पंच अवयव वाक्य हैं। 'हेतुवद् आभासन्ते ते हेत्वाभासः' अर्थात् वह हेतु जो सद् हेतु की तरह प्रतीत तो होता है किन्तु वस्तुतः वह सद् हेतु होता नहीं है, उसे ही हेत्वाभास कहते हैं।

आचार्य ने हेत्वाभास के 5 प्रकार बतलाये हैं – (1) सव्यभिचार, (2) विरुद्ध, (3) सत्प्रतिपक्ष, (4) असिद्ध, (5) बाधित।

'उपमितिकरणम् उपमानम्' अर्थात् उपमिति का करण उपमान कहलाता है। यहाँ करण का अर्थ असाधारण कारण है। उपमिति ज्ञान की उत्पत्ति में उपमान ही वह असाधारण कारण होता है जिसका प्रयोग करने पर उपमिति की उत्पति तुरन्त हो जाती है। 'उपमिति' का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं – 'संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः' अर्थात् संज्ञा और संज्ञी के सम्बन्ध ज्ञान को उपमिति कहते हैं। सादृश्यज्ञान को उपमिति का करण कहा जाता है तथा उपमिति की प्रक्रिया में अतिदेश वाक्यार्थ का स्मरण अवान्तर व्यापार होता है।

शब्द प्रमाण का लक्षण है – 'आप्तवाक्यं शब्दः' अर्थात् आप्त पुरुष के वाक्य को शब्द प्रमाण कहा जाता है। आप्त का अर्थ है– यथार्थ बोलने वाला। कोई व्यक्ति जिस रूप में किसी पदार्थ का अनुभव करता है, जब वह किसी अन्य व्यक्ति को उस वस्तु के बारे में उसी प्रकार का यथार्थ कथन करता है तो उसे ही आप्त कहा जाता है। 'आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि किसी वाक्य के अर्थज्ञान में कारण होते है। यदि किसी व्यक्ति को किसी वाक्य का अर्थबोध करना है तो उसे आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि का ज्ञान अवश्य होना चाहिए क्योंकि ये तीनों वाक्य का अर्थज्ञान कराने में सहकारी कारण बनते हैं। इनके बिना किसी भी वाक्य का अर्थबोध नहीं किया जा सकता है।

अयथार्थ अनुभव का लक्षण है – 'तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थ' अर्थात् उस प्रकार का अभाव होने पर भी उस प्रकार (विशेषण) का अनुभव होना अयथार्थानुभव है। आशय यह है कि जो वस्तु जैसी नहीं है उसको जब हम वैसा ग्रहीत करते हैं तो इसे ही अयथार्थ ज्ञान कहा जाता है। अयथार्थानुभव तीन प्रकार का होता है – संशय, विपर्यय एवं तर्क। एक ही धर्मी (पदार्थ/वस्तु) में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों के वैशिष्ट्य को विषय बनाने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं। व्याप्य के आरोप से व्यापक के आरोप को तर्क कहते हैं।

समस्त व्यवहारों का हेतुभूत गुण ही बुद्धि या ज्ञान कहलाता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है – स्मृति और अनुभव। इनमें से स्मृति का लक्षण है – 'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः' अर्थात् जो ज्ञान संस्कार मात्र से उत्पन्न होता है उसे ही स्मृति कहते हैं। स्मृति ज्ञातविषयक ज्ञान होती है। यह स्मृति दो प्रकार की है – (1) यथार्थ स्मृति, (2) अयथार्थ स्मृति। प्रमा अर्थात् यथार्थ अनुभव से उत्पन्न होने वाली स्मृति यथार्थ स्मृति कहलाती है। अप्रमा अर्थात् अयथार्थ अनुभव से उत्पन्न होने वाली स्मृति अयथार्थ स्मृति कहलाती है।

8.7 शब्दावली

प्रमा, प्रमाण, अनुमान, व्याप्ति, पक्ष, सपक्ष, विपक्ष, परामर्श, पक्षधर्मता, हेत्वाभास, उपमान, उपमिति, कारण, करण, अतिदेशवाक्य, अवान्तरव्यापार, शब्द, आप्त, वाक्य, आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि, अयथार्थानुभव, संशय, विपर्यय, तर्क, स्मृति, संस्कार।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- तर्कसंग्रह : (स्वोपज्ञव्याख्यातर्कदीपिकासहितः), (व्याख्याकार) डॉ. दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2012।
- तर्कसंग्रह : (स्वोपज्ञव्याख्यातर्कदीपिकापदकृत्यतर्कमीमांसासहितः), (व्याख्याकार) डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2013।
- भारतीय दर्शन, दत्ता एवं चटर्जी, पुस्तक भण्डार, पटना, 1969।
- Tarksangraha ofAnnambhatta (with Dipika & Nyayabodhini), (Ed. & Tr.) Athalye & Bodas, Mumbai, 1930.

8.9 अभ्यास प्रश्न

1) अनुमान प्रमाण के स्वरूप का विवेचन कीजिए?
2) अनुमान के द्विविध भेदों का विस्तृत वर्णन कीजिए?
3) हेतु के त्रिविध प्रकारों का वर्णन कीजिए?
4) पञ्च हेत्वाभासों का निरूपण कीजिए?
5) तर्कसंग्रह के अनुसार उपमान प्रमाण का विवेचन कीजिए?
6) तर्कसंग्रह के अनुसार शब्द प्रमाण का विवेचन कीजिए?
7) अयथार्थानुभव का भेदसहित निरूपण कीजिए?
8) स्मृति का लक्षण स्पष्ट करते हुए उसके भेदों का विवेचन कीजिए?

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY